सियारामशरण गुप्त

(1895 - 1963)

सियारामशरण गुप्त का जन्म झाँसी के निकट चिरगाँव में सन् 1895 में हुआ था। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त इनके बड़े भाई थे। गुप्त जी के पिता भी कविताएँ लिखते थे। इस कारण परिवार में ही इन्हें कविता के संस्कार स्वतः प्राप्त हुए। गुप्त जी महात्मा गांधी और विनोबा भावे के विचारों के अनुयायी थे। इसका संकेत इनकी रचनाओं में भी मिलता है। गुप्त जी की रचनाओं का प्रमुख गुण है कथात्मकता। इन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर करारी चोट की है। देश की ज्वलंत घटनाओं और समस्याओं का जीवंत चित्र इन्होंने प्रस्तुत किया है। इनके काव्य की पृष्ठभूमि अतीत हो या वर्तमान, उनमें आधुनिक मानवता की करुणा, यातना और द्वंद्व समन्वित रूप में उभरा है।

सियारामशरण गुप्त की प्रमुख कृतियाँ हैं : *मौर्य विजय, आर्द्रा, पाथेय, मृण्मयी, उन्मुक्त, आत्मोत्सर्ग, दूर्वादल* और *नकुल।*

'एक फूल की चाह' गुप्त जी की एक लंबी और प्रसिद्ध कविता है। प्रस्तुत पाठ उसी कविता का एक अंश मात्र है। पूरी कविता छुआछूत की समस्या पर केंद्रित है। एक मरणासन्न 'अछूत' कन्या के मन में यह चाह उठी कि काश! देवी के चरणों में अर्पित किया हुआ एक फूल लाकर कोई उसे दे देता। कन्या के पिता ने बेटी की मनोकामना पूरी करने का बीड़ा उठाया। वह देवी के मंदिर में जा पहुँचा। देवी की आराधना भी की, पर उसके बाद वह देवी के भक्तों की नज़र में खटकने लगा। मानव-मात्र को एकसमान मानने की नसीहत देनेवाली देवी के सवर्ण भक्तों ने उस विवश, लाचार, आकांक्षी मगर 'अछूत' पिता के साथ कैसा सलूक किया, क्या वह अपनी बेटी को फूल लाकर दे सका? यह कविता का मार्मिक अंश ही बताएगा।

एक फूल की चाह

उद्वेलित कर अश्रु-राशियाँ,
हृदय-चिताएँ धधकाकर,
महा महामारी प्रचंड हो
फैल रही थी इधर-उधर।
क्षीण-कंठ मृतवत्साओं का
करुण रुदन दुर्दांत नितांत,
भरे हुए था निज कृश रव में
हाहाकार अपार अशांत।

बहुत रोकता था सुखिया को,
'न जा खेलने को बाहर',
नहीं खेलना रुकता उसका
नहीं ठहरती वह पल-भर।
मेरा हृदय काँप उठता था,
बाहर गई निहार उसे;
यही मनाता था कि बचा लूँ
किसी भाँति इस बार उसे।

भीतर जो डर रहा छिपाए,
हाय! वही बाहर आया।
एक दिवस सुखिया के तनु को
ताप-तप्त मैंने पाया।
ज्वर में विह्वल हो बोली वह,
क्या जानूँ किस डर से डर,
मुझको देवी के प्रसाद का
एक फूल ही दो लाकर।

क्रमशः कंठ क्षीण हो आया,
शिथिल हुए अवयव सारे,
बैठा था नव-नव उपाय की
चिंता में मैं मनमारे।
जान सका न प्रभात सजग से
हुई अलस कब दोपहरी,
स्वर्ण-घनों में कब रवि डूबा,
कब आई संध्या गहरी।

सभी ओर दिखलाई दी बस,
अंधकार की ही छाया,
छोटी-सी बच्ची को ग्रसने
कितना बड़ा तिमिर आया!
ऊपर विस्तृत महाकाश में
जलते-से अंगारों से,
झुलसी-सी जाती थी आँखें
जगमग जगते तारों से।

देख रहा था–जो सुस्थिर हो
नहीं बैठती थी क्षण–भर,
हाय! वही चुपचाप पड़ी थी
अटल शांति–सी धारण कर।
सुनना वही चाहता था मैं
उसे स्वयं ही उकसाकर–
मुझको देवी के प्रसाद का
एक फूल ही दो लाकर!

ऊँचे शैल–शिखर के ऊपर
मंदिर था विस्तीर्ण विशाल;
स्वर्ण–कलश सरसिज विहसित थे
पाकर समुदित रवि–कर–जाल।
दीप–धूप से आमोदित था
मंदिर का आँगन सारा;
गूँज रही थी भीतर–बाहर
मुखरित उत्सव की धारा।

भक्त–वृंद मृदु–मधुर कंठ से
गाते थे सभक्ति मुद–मय,–
'पतित–तारिणी पाप–हारिणी,
माता, तेरी जय–जय–जय!'
'पतित–तारिणी, तेरी जय–जय'–
मेरे मुख से भी निकला,
बिना बढ़े ही मैं आगे को
जाने किस बल से ढिकला!

मेरे दीप-फूल लेकर वे
अंबा को अर्पित करके
दिया पुजारी ने प्रसाद जब
आगे को अंजलि भरके,
भूल गया उसका लेना झट,
परम लाभ-सा पाकर मैं।
सोचा,–बेटी को माँ के ये
पुण्य-पुष्प दूँ जाकर मैं।

सिंह पौर तक भी आँगन से
नहीं पहुँचने मैं पाया,
सहसा यह सुन पड़ा कि–"कैसे
यह अछूत भीतर आया?
पकड़ो, देखो भाग न जावे,
बना धूर्त यह है कैसा;
साफ़-स्वच्छ परिधान किए है,
भले मानुषों के जैसा!

पापी ने मंदिर में घुसकर
किया अनर्थ बड़ा भारी;
कलुषित कर दी है मंदिर की
चिरकालिक शुचिता सारी।"
ऐं, क्या मेरा कलुष बड़ा है
देवी की गरिमा से भी;
किसी बात में हूँ मैं आगे
माता की महिमा के भी?

माँ के भक्त हुए तुम कैसे,
करके यह विचार खोटा?
माँ के सम्मुख ही माँ का तुम
गौरव करते हो छोटा!
कुछ न सुना भक्तों ने, झट से
मुझे घेरकर पकड़ लिया;
मार-मारकर मुक्के-घूँसे
धम-से नीचे गिरा दिया!

मेरे हाथों से प्रसाद भी
बिखर गया हा! सबका सब,
हाय! अभागी बेटी तुझ तक
कैसे पहुँच सके यह अब।
न्यायालय ले गए मुझे वे,
सात दिवस का दंड-विधान
मुझको हुआ; हुआ था मुझसे
देवी का महान अपमान!

मैंने स्वीकृत किया दंड वह
शीश झुकाकर चुप ही रह;
उस असीम अभियोग, दोष का
क्या उत्तर देता, क्या कह?
सात रोज़ ही रहा जेल में
या कि वहाँ सदियाँ बीतीं,
अविश्रांत बरसा करके भी
आँखें तनिक नहीं रीतीं।

दंड भोगकर जब मैं छूटा,
पैर न उठते थे घर को;
पीछे ठेल रहा था कोई
भय-जर्जर तनु पंजर को।
पहले की-सी लेने मुझको
नहीं दौड़कर आई वह;
उलझी हुई खेल में ही हा!
अबकी दी न दिखाई वह।

उसे देखने मरघट को ही
गया दौड़ता हुआ वहाँ,
मेरे परिचित बंधु प्रथम ही
फूँक चुके थे उसे जहाँ।
बुझी पड़ी थी चिता वहाँ पर
छाती धधक उठी मेरी,
हाय! फूल-सी कोमल बच्ची
हुई राख की थी ढेरी!

अंतिम बार गोद में बेटी,
तुझको ले न सका मैं हा!
एक फूल माँ का प्रसाद भी
तुझको दे न सका मैं हा!

प्रश्न-अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

(क) कविता की उन पंक्तियों को लिखिए, जिनसे निम्नलिखित अर्थ का बोध होता है–

(i) सुखिया के बाहर जाने पर पिता का हृदय काँप उठता था।

....

....

....

....

(ii) पर्वत की चोटी पर स्थित मंदिर की अनुपम शोभा।

....

....

....

....

(iii) पुजारी से प्रसाद/फूल पाने पर सुखिया के पिता की मन:स्थिति।

....

....

....

....

(iv) पिता की वेदना और उसका पश्चाताप।

....

....

....

....

(ख) बीमार बच्ची ने क्या इच्छा प्रकट की?

(ग) सुखिया के पिता पर कौन-सा आरोप लगाकर उसे दंडित किया गया?

(घ) जेल से छूटने के बाद सुखिया के पिता ने अपनी बच्ची को किस रूप में पाया?

(ङ) इस कविता का केंद्रीय भाव अपने शब्दों में लिखिए।

(च) इस कविता में से कुछ भाषिक प्रतीकों/बिंबों को छाँटकर लिखिए–
उदाहरण: *अंधकार की छाया*

(i) .... (ii) ....
(iii) .... (iv) ....
(v) ....

2. निम्नलिखित पंक्तियों का आशय स्पष्ट करते हुए उनका अर्थ-सौंदर्य बताइए–

(क) अविश्रांत बरसा करके भी
आँखें तनिक नहीं रीतीं

(ख) बुझी पड़ी थी चिता वहाँ पर
छाती धधक उठी मेरी

(ग) हाय! वही चुपचाप पड़ी थी
अटल शांति-सी धारण कर

(घ) पापी ने मंदिर में घुसकर
किया अनर्थ बड़ा भारी

योग्यता-विस्तार

1. 'एक फूल की चाह' एक कथात्मक कविता है। इसकी कहानी को संक्षेप में लिखिए।
2. 'बेटी' पर आधारित निराला की रचना 'सरोज-स्मृति' पढ़िए।
3. तत्कालीन समाज में व्याप्त स्पृश्य और अस्पृश्य भावना में आज आए परिवर्तनों पर एक चर्चा आयोजित कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणियाँ

उद्वेलित	–	भाव-विह्वल
अश्रु-राशियाँ	–	आँसुओं की झड़ी
महामारी	–	बड़े स्तर पर फैलनेवाली बीमारी
प्रचंड	–	तीव्र
क्षीण	–	दबी आवाज़, कमज़ोर
मृतवत्सा	–	जिस माँ की संतान मर गई हो
रुदन	–	रोना
दुर्दांत	–	हृदयविदारक, जिसे दबाना या वश में करना कठिन हो
नितांत	–	बिलकुल, अलग, अत्यंत
कृश	–	पतला, कमज़ोर
रव	–	शोर

तनु	–	शरीर
ताप-तप्त	–	ज्वर से पीड़ित
शिथिल	–	कमज़ोर, ढीला
अवयव	-	अंग
विह्वल	–	दुःखी, बेचैन
स्वर्ण घन	–	सुनहले बादल
ग्रसना	–	निगलना
तिमिर	–	अंधकार
विस्तीर्ण	–	फैला हुआ
सरसिज	–	कमल
रविकर जाल	–	सूर्य-किरणों का समूह
आमोदित	–	आनंदपूर्ण
अविश्रांत	–	बिना रुके हुए, लगातार
ढिकला	–	ठेला गया, धकेला गया
सिंह पौर	–	मंदिर का मुख्य द्वार
परिधान	–	वस्त्र
शुचिता	–	पवित्रता
कंठ क्षीण होना	–	रोने के कारण स्वर का क्षीण या कमज़ोर होना
प्रभात सजग	–	हलचल से भरी सुबह
अलस दोपहरी	–	आलस्य से भरी दोपहरी